8

बाल नाट्य साहित्य लेखन और महत्व

मेहराज अली*

शिक्षाविदों ने बाल नाटकों को शिक्षा प्रदान करने का एक माध्यम माना है। स्कूली शिक्षा में बाल नाटकों का समावेश होना चाहिए। हर समय पढ़ाई का बोझ उनके बचपन को, उनके व्यक्तित्व के रचनात्मक पक्ष को अधिक विकसित होने का मौका नहीं देता। इसलिए बाल मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए नाटक के माध्यम से पाठ्यक्रम पढ़ाना अच्छा तरीका है। केवल रटने वाली शिक्षा के बजाय स्कूली अध्यापन के समय कक्षा में कुछ विषय नाट्यात्मक रूप से पढ़ाए जाने चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में तो बालकों के मानसिक, शारीरिक विकास के लिए नाट्याभिनय प्रभावशाली साधन हो सकता है। प्रस्तुत लेख में बाल नाटकों की विशेषता बताई गयी है और साथ ही नाटक लेखन संबंधी तत्वों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

सामान्यतः बालकों के लिए लिखा गया नाटक 'बाल नाटक' कहलाता है। बाल नाटक, बाल साहित्य की एक सशक्त और प्रभावपूर्ण विधा है। वयस्कों के लिए लिखे गए नाटकों को काट-छाँटकर किया गया छोटा संस्करण बाल नाटक नहीं होता, बल्कि बच्चों की मानसिकता को केंद्र में रखकर लिखे गए नाटक बाल नाटक कहलाते हैं। यदुनाथ थत्ते के अनुसार रूसो का मानना है बालक को बालक मानकर चलो, मनुष्य को मनुष्य। हर एक का अपना महत्व है। बालक का सोचने का, देखने का, अनुभव करने का अपना तरीका है। वही उसके लिए उपयुक्त है, उसका स्थानापन्न दूसरा नहीं। अतः बच्चों की अपनी दुनिया होती है और वे उसे अपने तरीके से ही जीना पसंद करते हैं।

बच्चे अपने खेल की वस्तुओं को ही साधन-सामग्री के रूप में प्रयोग कर अपना नाटक खेलते हैं। बच्चे स्वयं अपने लिए नाटक की रचना करते हैं। इस खेल-खेल के नाटक में स्वभावतः बच्चे अपने विषय, अपनी संवेदना तथा अपने अनुभव उतारते हैं। यहाँ कोई नियम, कोई शर्त नहीं होती। बच्चे इसे अपनी रुचि अनुसार ढाल लेते हैं। इनकी कोई निश्चित और बनी बनाई कथा-संवाद योजना नहीं होती है, फिर भी ये नाटक प्रभावशाली बन जाते हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का मानना है कि "बच्चों के लिए नाटक

* ई-262/H-208, कठपुतली कॉलोनी, शादीपुर, नयी दिल्ली-110008

लिखना, उनके साथ खिलौना बनाने की तरह है। हो सकता है खिलौना बनाते समय बच्चा ज़िद करे कि चिड़िया नाचे, मकान, गाय और मोटर गाड़ी उड़े। आपको यह मानना होगा।"

बच्चों के लिए नाटक लिखते समय ध्यान दें कि बच्चों के अनुकूल बाल नाटकों की रचना की जानी चाहिए। बच्चों के कल्पना की उड़ान को नाटक की कथा का आधार बनाया जा सकता है, भले ही बच्चों की कल्पनाएँ बड़ों के लिए निरर्थक साबित हों किंतु उन्हें इसे स्वीकार करके उनकी कल्पनाशक्ति की ओर सर्जनात्मक दृष्टिकोण से देखते हुए नाटकों की रचना करनी चाहिए। बाल नाटक अन्य नाटकों से कई प्रकार से भिन्न है। अतः बाल नाटक के निर्माण के समय उसके महत्वपूर्ण तत्वों का ध्यान रखना आवश्यक है।

सीखने की प्रक्रिया में बाल नाटकों का महत्व

1. बाल नाटकों का संबंध बालकों के मानसिक तथा बौद्धिक विकास से है। इनमें बच्चों के खेल, उनका आपसी व्यवहार, उनकी कल्पनाएँ, उनकी समस्याएँ आदि का विचार किया जाता है।
2. नाटकों से बच्चों को अपने कल्पनालोक में विचरने का, अपने अनुभव संसार से जुड़ने का और मनोरंजन के माध्यम से जीवन विषयक सदुपयोग प्राप्त करने का अवसर मिलता है।
3. नाटक में साहित्य के अलावा संगीत, नृत्य, चित्रकला एवं अभिनय आदि का समावेश होने से नाटक बच्चों को काफ़ी देर तक अपने में तल्लीन रख सकते हैं, जिससे उन्हें ऊब नहीं होती और वे लंबे समय तक तल्लीनता से उसमें भाग ले सकते हैं।
4. बाल नाटकों में मनोरंजन के साथ ही एक मीठे उपदेश का सजीलापन होता है जो इन्हें एक समग्र बनाता है।
5. नाटक के माध्यम से बच्चों में तर्क-वितर्क करने की क्षमता और शाब्दिक ज्ञान में बढ़ोत्तरी होती है।
6. कक्षा में एक नयी भूमिका को स्वीकार करना और मंच पर एक पात्र विशेष की भूमिका प्रस्तुत करना। बच्चों को उनके विचारों और योग्यताओं पर विश्वास करने में मदद करता है।
7. नाटक की क्रियाओं में पूर्वाभ्यास एवं पुनराभ्यास के दौरान बच्चों को शब्द, भाव-भंमिताएँ, शारीरिक स्थिति आदि सभी का स्मरण रखना होता है एवं उन्हें बार-बार दुहराना होता है। जो बच्चों की स्मरण शक्ति बढ़ाने में मदद करता है।

बाल नाटक के तत्व

नाटक के तत्वों के संदर्भ में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के विचारों में भिन्नता है। भारतीय आचार्यों ने नाटक को दृश्य काव्य मानकर 'रस' को ही नाटक का प्रधान तत्व स्वीकार किया है। तो पाश्चात्य विद्वानों ने 'वस्तु' को नाटक का प्रमुख तत्व माना है। किंतु भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य तत्वों का सम्मिश्रण करके नाटक के तत्व तय किये गए। परिवर्तन के स्वाभाविक नियमानुसार नाटकों में भी परिवर्तन आते रहे हैं, किंतु नाटक के तत्व स्थायी रूप में ही रहे हैं।

नाटक विधा की स्वतंत्र पहचान देने वाले ये तत्व बाल नाटकों में भी वही होते हैं। अंतर केवल गठन और नाट्य संरचना के पीछे के बालोचित मानसिकता का होता है। दूसरें शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि बाल नाटकों में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद

और भाषा शैली, देशकाल-वातावरण आदि तत्वों की सीमाएँ, बालरुचि और बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से ही बंधी हुई है जो बाल नाटकों के पृथक् स्वरूप का निर्माण करते हैं। बाल नाटक के तत्वों का विस्तार नीचे दिया गया है—

1. कथावस्तु

नाटक के रचना तंत्र में कथावस्तु का विशेष महत्व होता है। कथावस्तु और कथा में अंतर होता है। कथा में विभिन्न स्थान, काल की घटनाओं का चित्रण होता है। ये कथाएँ अनेक विषयों पर आधारित होती हैं। बाल नाटकों की कथा के लिए विषयों की सीमा नहीं है। विषय जो भी हो उनका चुनाव बालकों की शारीरिक तथा मानसिक क्षमता के अनुसार होना चाहिए। इन विषयों से बच्चों को मनोरंजन के साथ ही उन्हें विचार करने के लिए प्रेरणा भी मिलनी चाहिए। बाल नाटकों की कथाएँ भी विभिन्न विषयों पर आधारित होती हैं। जैसे – ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, काल्पनिक, समस्यामूलक आदि।

ऐतिहासिक कथाओं से बालकों को देश के इतिहास की जानकारी दी जाती है। देश की आज़ादी के हेतु बलिदान देने वाले वीरों की गाथाओं से बच्चों को परिचित करके उनके सम्मुख आदर्श प्रस्थापित किए जाते हैं। इससे बच्चे वीरों की तरह देश की रक्षा करना, अन्याय के विरूद्ध लड़ना, संकटों का सामना करना आदि बातें सीखते हैं।

पौराणिक तथा धार्मिक कथाओं के माध्यम से बच्चों को पुरातन काल में जो लोग अपने महान कार्य से प्रसिद्ध हुए, जो ईश्वरीय आराधना करके सब लोगों के लिए वन्दनीय-पूजनीय बन गए, ऐसे महान लोगों की जानकारी दी जाती है जिससे बच्चे भी सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, ईश्वरीय आराधना, कर्तव्यनिष्ठा आदि विशेषताओं को अपना सकें। बच्चों को उनके भविष्य को सँवारने में ऐसे नाटक सहायक होते हैं।

समाज में स्थित धर्म, उसकी मान्यताएँ, परंपराएँ, संस्कृति आदि की जानकारी धार्मिक सांस्कृतिक नाटकों से देकर बच्चों को अपनी संस्कृति का अर्थ करने की तथा एकता से रहने की सीख दी जा सकती है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म 'मानवता' है यह संदेश बच्चों तक पहुँचाया जा सकता है।

समस्यामूलक या समस्याप्रधान नाटकों में बच्चों की समस्याओं का चित्रण होता है। समस्याओं से केवल बड़ों को ही नहीं जूझना पड़ता, बल्कि बच्चों को भी अपने दैनंदिन जीवन तथा व्यवहार में अनेक समस्याएँ आती हैं। जैसे घर के सदस्यों की हर बात मानकर उन्हें अपनी मर्ज़ी के खिलाफ़ कई बातें करनी पड़ती हैं। अनचाही बातें करना उनके लिए समस्या बन सकती है। अर्थात् हर समय बड़ों की रोक-टोक बच्चों के लिए समस्या होती है। बच्चों के लिए उनके खिलौने बिल्कुल सजीव होते हैं। बच्चों के लिए गुड़िया की बीमारी भी समस्या बन जाती है। जिसके इलाज के लिए वे अनेक प्रयास करते हैं। हर रोज पाठशाला जाना, पढ़ाई करना, परीक्षाएँ देना, पाठशाला के समय की पाबंदी का पालन करना, पाठशाला से संबंधित अनेक बातें बच्चों को समस्याएँ लगती हैं। यहाँ तक की खेल के मैदान में सब बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं तो कौन-सा खेल खेलें? कौन कप्तान बनेगा? आदि मतभेद भी

इनकी समस्या हो सकती है। इस तरह की छोटी-छोटी बातें जो बच्चों की परेशानियाँ बढ़ाती हैं वे भी उन्हें समस्या ही लगती हैं। इसी कारण समस्या प्रधान नाटकों द्वारा बच्चों की इन छोटी-छोटी समस्याओं का चित्रण करके उन समस्याओं को बच्चों द्वारा ही सुलझाने का प्रयास किया जाता है। जिससे बच्चे समझ सकें कि ये कोई बड़ी समस्याएँ नहीं हैं, इन्हें समझदारी से और दिलचस्पी से आसानी से सुलझाया जा सकता है।

सामाजिक नाटकों में बच्चों की रुचि नहीं होती। फिर भी समाज में स्थित समस्याएँ, रुढ़ि, प्रथा, परंपरा, विषमता, वर्ग-भेद आदि बातों की जानकारी देने हेतु सामाजिक नाटकों की रचना की जा सकती है। इन नाटकों द्वारा बच्चों को प्रचीन काल से चली आयी परंपराएँ तथा मान्यताएँ और आधुनिक विचार शैली में चलने वाले द्वंद्व तथा पुरानी और नयी पीढ़ी के जीवन मूल्यों का संघर्ष आदि की जानकारी अवश्य दी जा सकती है, किंतु इसे बच्चे अपनी उम्र तथा मानसिक क्षमता के अनुसार ही ग्रहण कर पाएँगे, इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है।

काल्पनिक कथाओं से बच्चों का सबसे अधिक मनोरंजन होता है। क्योंकि काल्पनिक प्रवृत्ति बच्चों में बहुत होती है, वे एक जगह बैठकर कल्पना में ही सारे ब्रह्मांड का भ्रमण कर लेते हैं। उनकी कल्पनाओं का ही चित्रण इन कथाओं में किया जाता है। इन कथाओं में कौतुहल, रोचकता तथा सीख होती है। बचपन से ही बच्चे दादी-नानी से राजा-रानी, परी-राक्षस, जादूगर आदि की कहानियाँ सुनते हैं। एक विशिष्ट आयु वर्ग तक के सात-आठ वर्ष के बच्चे इन कथाओं में रुचि रखते हैं। इन बच्चों को आलौकिक, असाधारण तथा अद्‌भुत बातों में अधिक रस होता है। यहाँ बच्चों की कल्पनाशक्ति विस्तार पाकर रचनात्मक रूप ले सकती है। उनके लिए पेड़-पौधे, परी-राक्षस, पशु-पक्षी, आकाश-सूरज, चाँद-सितारे और मम्मी-पापा सब बराबर होते हैं। बच्चों के लिए असंभव बातें भी संभव होती हैं। इन कथाओं से बच्चों का मनोरंजन तो होता ही है साथ उनकी कल्पनाशक्ति के विकास में ये कथाएँ सहायक भी होती हैं।

कथावस्तु नाटक की संरचना का महत्वपूर्ण सूत्र है जो अन्य तत्वों से जुड़कर अर्थों का निर्माण करती है। कथावस्तु संरचना के संदर्भ में पंडित सीताराम चतुर्वेदी के विचार हैं – "अंकों और दृश्यों के अनुसार घटनाओं की किसी सजावट को कथावस्तु कहते हैं, जिसमें नाटकीय कुतूहल आदि से अंत तक बना रहे और साथ ही घटनाओं को आकर्षक, कुतूहलजनक, रसमय बनाने के लिए कल्पित घटनाओं या पात्रों का समावेश किया जा सके।" इस तरह कथावस्तु शब्द, भाव-विचार तथा दृश्य को जोड़ने वाला नाटकीय उपादान बन जाती है।

बाल नाटकों की कथाओं में विविध विषयों के साथ ही उस कथा की संरचना भी महत्वपूर्ण होती है। बाल नाटक देखने वाले दर्शकों में बालकों की संख्या अधिक होती है। बच्चे स्वभाव से चंचल होते हैं। एक जगह बहुत देर तक बैठना, नाटक देखना बच्चों के लिए संभव नहीं होता। इसलिए नाटककारों का यह प्रयास रहता है कि कथावस्तु का कलेवर छोटा रखें। हालाँकि, प्रत्येक नाटक में ऐसा कर पाना संभव नहीं

होता फिर भी बच्चों की शारीरिक तथा मानसिक क्षमता को जानकर यह प्रयास करना आवश्यक होता है। क्योंकि बड़े-बड़े कलेवर से बच्चों के ऊब जाने की संभावना होती है।

2. चरित्र-चित्रण

कथात्मक विधा होने तथा अभिनय से साक्षात् होने के कारण नाटक में चरित्र-चित्रण का विशेष महत्व होता है। चरित्र-चित्रण नाटक का प्रमुख एवं स्थायी तत्व होता है। अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक में चरित्र-चित्रण को कथावस्तु की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया है। वह नाटक में प्राण संचार का कार्य करता है। हडसन चरित्र सृष्टि को नाटक की महानता का मानदंड मानते हैं। नाटकीय चरित्र मानव स्वभाव चित्रित करने में तथा जीवन की व्याख्यान प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं। इसलिए नाटक में कथा वस्तु और चरित्र चित्रण एक-दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित तत्व बनते हैं। पात्रों की सजीवता तथा उनकी वास्तविकता पर नाटक की सरलता निर्भर होती है।

नाटक की कथा के अनुसार ही इसमें पात्रों की संख्या निर्धारित की जाती है। नाटक में मुख्य पात्र तथा गौण पात्रों का समावेश किया जाता है। बाल नाटकों के पात्रों की संख्या सीमित रखने का प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि उसमें बाल दर्शकों की उम्र तथा उनकी आकलन क्षमता का विचार आवश्यक होता है। नाटक के हर पात्र का नाम, उसकी चरित्रगत विशेषताएँ, पात्रों के पारस्परिक संबंध आदि बच्चे समझ सकें इसीलिए पात्रों की संख्या कम होना उचित होता है। किंतु ऐसा सभी नाटकों में संभव नहीं होता। नाटक की कथा के अनुसार पात्रों का होना आवश्यक होता है। जैसे ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों की संख्या अधिक होना स्वाभाविक होता है। प्रत्येक नाटक में मुख्य पात्र तथा गौण पात्र होते हैं। ऐतिहासिक नाटकों में गौण पात्र विशेषतः अधिक होते हैं। जैसे – दास, दासी, सैनिक, सिपाही, सखियाँ, नागरिक आदि।

कई बच्चे चाहते हैं कि उन्हें मंच पर अभिनय करने का मौका मिले। उनके अभिभावक, दोस्त उन्हें मंच पर अभिनय करते देखें और उनकी प्रशंसा करें। बच्चों की इस इच्छा पूर्ति के लिए कई नाटककार इस प्रयास में रहते हैं कि अधिक से अधिक बच्चों को रंगमंच पर अभिनय करने का अवसर मिले। उनकी इस कोशिश के कारण बाल नाटकों के पात्रों की संख्या सीमित रखना कभी-कभी संभव नहीं हो पाता। बच्चों की रंगमंच पर आने की तीव्र इच्छा की पूर्ति के कारण कहानी में अनेक चरित्र रखने या जोड़ने पड़ते हैं। पशु-पक्षियों की कहानी में एक चिड़िया के स्थान पर पक्षियों का झुंड दिखाया जाता है। जंगल के दृश्य में कई जानवर तथा अनेक पेड़ दिखाये जाते हैं। अर्थात् यहाँ बच्चों का समावेश किया जाता है। पात्रों की संख्या कम हो या अधिक नाटककार हर पात्र के द्वारा बच्चों की मनोवृत्ति, उनकी प्रतिस्पर्धा, सरलता, भोलापन और जिज्ञासा का सुंदर ढंग से अंकन करने का प्रयास करते हैं।

बाल नाटकों की कथाएँ आदर्शात्मक होती हैं। अतः इन नाटकों के चरित्र संस्कार संपन्न तथा आदर्श होना स्वाभाविक ही है। बाल नाटकों में कई पात्र ऐसे होते हैं जो अपने चरित्र के माध्यम से बच्चों के सम्मुख

आदर्श प्रस्थापित करते हैं, जो बच्चों को ईमानदारी, मेहनत, देश-प्रेम, सत्यनिष्ठा, एकता आदि गुणों से परिचित कराके इन सद्गुणों को उनके मन में निर्माण करने का प्रयास करते हैं।

समाज में केवल आदर्श या महान लोग ही नहीं होते। जिस तरह से सिक्के के दो पहलू होते हैं वैसे ही समाज में भी अच्छे लोगों की तरह ही बुरे, निःस्वार्थ, स्वार्थी, लोभी, शोषक, अन्यायी, देशद्रोही जैसी प्रवृत्ति के लोग भी होते हैं। इस वास्तविकता से भी बच्चों को परिचित कराना अत्यावश्यक होता है। इसलिए आदर्श पात्रों के साथ कुछ ऐसे पात्रों का भी चित्रण नाटकों में किया जाता है जिससे बच्चे समझ सकें कि बुरे लोगों के कर्म का फल बुरा ही होता है। ये चरित्र जीवन में सफल तथा सुखी नहीं हो पाते हैं। यह देखकर बच्चों के मन में बुराई के प्रति नकारात्मक दृष्टि पैदा हो सकती है। बच्चे बचपन से ही अच्छी और बुरी बातों को समझ सकें, उसमें फ़र्क कर सकें तथा उन्हें पहचान सकें इसीलिए इन चरित्रों का चित्रण करना भी आवश्यक होता है।

3. संवाद एवं भाषा शैली

भाषा शैली के कारण ही नाटक या साहित्य की किसी भी विधा का भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष उत्कृष्टता की सीमा तक पहुँचता है। भावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा है। भाषा एवं संवाद नाटक को रूपायित करने वाला, नाटक में सजीवता का संचार करने वाला तथा नाटक के विभिन्न उपकरणों को पिरोकर रखने वाला तत्व है। नाटक शब्द मिश्रित कला है। अतः नाटककार के लिए भाषा और संवाद बहुत बड़ी चुनौती होती है। संवाद, नाटक की क्रिया में भाग लेने वाले पात्रों की बातचीत है। नाटक केवल संवादों में ही उभरता है। इसी कारण संवादों को नाटक का कलेवर माना जाता है। नाटक में जो भी भाव, विचार, संवेग, जीवन दृष्टियाँ आदि व्यक्त होती हैं वे संवादों के माध्यम से ही संभव हैं। ये संवाद नाटक को अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग पहचान देते हैं। पात्रों के चरित्र का ज्ञान संवाद के माध्यम से होता है। नाटक के अंतगर्त संवादों की प्रकृति, पात्रों के स्तर, मर्यादा एवं मानसिक स्थिति के अनुरूप होनी चाहिए। क्योंकि नाटक के संवाद केवल पढ़ने के लिए नहीं होते। संवाद तो अभिनेताओं द्वारा बोलने के लिए होते हैं। संवादों से नाटक स्वाभाविक ऊर्जा से आगे बढ़ता है।

बाल पाठक तथा बाल दर्शकों को केंद्र में रखते हुए भाषा की जटिलता को त्यागकर उसकी सरलता को अपनाया जाता है। बाल नाटकों की भाषा सरस, सरल और सहज होनी चाहिए। नाटक के हर प्रसंग से विभिन्न भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावनाओं के अनुसार भाषा का प्रयोग किया जाता है। पात्रों के स्वभाव तथा परिस्थितियों के अनुसार भाषा में माधुर्य, सजीवता, सुबोधता, भावुकता, ओज, आवेग, तर्क तथा व्यंग्य आदि होना चाहिए। किंतु बाल नाटकों में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि भाषा क्लिष्ट तथा अधिक संस्कृतनिष्ठन हो, क्योंकि ऐसी भाषा बाल दर्शकों को तुरंत ग्रहण करने से रोक सकती है और नाटक के बाल अभिनेता के लिए भी हानिकारक हो सकती है। इसीलिए छोटे बच्चों के लिए सहज सरल भाषा होनी चाहिए।

संवादों की रचना करते समय एक तरफ बच्चों का भाषा ज्ञान, शब्द भंडार तथा ज्ञान सीमा को ध्यान में रखना पड़ता है तो दूसरी तरफ उनका शब्द भंडार बढ़ाना, विभिन्न विषयों के अनुकूल भाषा प्रयोग करना तथा मंच पर बाल अभिनेताओं द्वारा संवादों के उच्चारण की स्थिति आदि को ध्यान में रखा जाता है। छोटे-छोटे, सरल, संक्षिप्त वाक्य तथा विषयानुकूल भाषा बाल नाटकों के लिए अपेक्षित होती है।

बच्चों की गीत, ताल, लय, पद्य में अधिक रुचि होती है। इसलिए नाटकों में पद्यात्मक संवादों का भी उपयोग किया जाता है। बच्चों की बहुत देर तक एक जगह बैठने की शारीरिक क्षमता न होने के बावजूद पद्यात्मक तथा लयात्मक संवाद, गीत, नृत्य, बच्चों को एक जगह बाँधे रखते हैं। इससे वे नाटक की तरफ केवल आकर्षित ही नहीं होते तो वे गीत-संगीत पर थिरकने लगते हैं। अभिनेताओं को भी पद्यात्मक संवाद जल्दी याद हो जाते हैं। नाटककार कहानी के अनुकूल कुछ संवादों और गीतों की रूपरेखा पहले बना लेते हैं। बच्चों के हाव-भाव और अभिनय के साथ शब्द या वाक्य बदलते रहते हैं।

बच्चों को पद्यात्मक संवादों के साथ ही शेरो-शायरी, चुटकले भी दिए जा सकते हैं। इस तरह के संवादों में तुकबंदी, लोकोक्ति, मुहावरे आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। बाल-दर्शकों को हँसाने-गुदगुदाने के लिए हास्य-प्रधान संवाद लिखे जा सकते हैं। इसमें संवाद बोलते समय जान-बूझकर तुतलाना, गलत बोलना, किसी वाक्य या किसी शब्द की आवृत्ति आदि युक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह बाल नाटकों के संवाद तथा भाषा में गतिशीलता के साथ ही संक्षिप्तता, सजीवता और सरलता होती है।

4. देशकाल–वातावरण

देशकाल से तात्पर्य उस नाटक में वर्णित रीति-रिवाज, परिस्थिति, रहन-सहन, आचार-विचार, समय, स्थान तथा प्रकृति वर्णन से है। नाटक किसी भी विषय पर आधारित हो उसे देश-काल और परिस्थिति आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखना पड़ता है। देशकाल-वातावरण में दृश्यबंध, प्रकाश योजना, वेशविन्यास और रूप-विन्यास, संगीत-ध्वनि प्रभाव आदि की सहायता से वातावरण निर्माण किया जाता है।

निष्कर्ष

बाल नाट्य साहित्य बच्चों में जिज्ञासा को उत्पन्न करता है। उन्हें सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से मज़बूत करने के साथ-साथ समूह में कार्य करना और एकता व सामूहिकता की भावना से परिचित कराता है। नाट्य लेखन के समय लेखक को चाहिए कि वह बाल मानसिकता और उनके चारित्रिक महत्व के अनुरूप ही नाट्य सृजन करे। इसका मूल कारण यह है कि बच्चों में ग्रहण करने की अपार शक्ति होती है। यदि नाटक में किसी प्रकार के नकारात्मक तत्वों का समावेश किया गया तो बच्चों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

छात्रों के लिए नाटक का शिक्षण–मनुष्य की पहचान, वाचिक अभिनय तथा जीवन दृष्टि अध्ययन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसीलिए विद्यालयीन पाठ्यक्रमों में नाटक का अध्ययन, नाट्य वाचन तथा नाट्य मंचन को अधिकाधिक स्थान देना ज़रूरी है।

अपनी तमाम व्यावहारिक कठिनाइयों के बावजूद शिक्षण क्रम में बाल नाटकों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता बल्कि ज़रूरत इस माध्यम और विधा को केंद्र में लाने की कोशिश करने की है।

संदर्भ

चतुर्वेदी, सीताराम. 1958. *अभिनव नाट्यशास्त्र*. प्रथम खंड, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी.

देवसरे, हरिकृष्णर. 2007. *हिंदी बाल साहित्य — एक अध्ययन*. आत्माराम एंड संस.

सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल. 1977. 'बच्चों का नाटक हाशिया छोड़कर लिखो'. *बालरंग*. वर्ष – 7, अंक 29, अप्रैल-सितंबर, दिल्ली.